आपने लिखा

श्रुतलेखन पर अंक 36 में लेख पढ़कर मन नहीं माना और एक बार फिर डरते-डरते अपने अनुभव लिखने बैठ गया। डरते हुए इसलिए क्योंकि मेरे अनुभवों को बड़ी मेहनत से भेजने पर आपने कोई प्रतिक्रिया तो छोड़िए, प्राप्ति की सूचना भेजना तक उचित नहीं समझा है।

श्रुतलेखन में बहुत कुछ नया होते हुए भी धरातल से जुड़े प्रायोगिक अनुभव कम ही नज़र आए। श्रुतलेखन के संबंध में लेखक के निष्कर्षों से पूर्णतः सहमत नहीं हुआ जा सकता है। एक शाला में मेरे द्वारा किए जा रहे प्रयोग अवलोकनार्थ भेज रहा हूं।

पहले यह स्पष्ट कर दूं कि प्राथमिक शाला तो छोड़िए, माध्यमिक और उच्चतर स्कूल में बच्चों की भाषा का स्तर अत्यन्त निम्न है, ना सिर्फ बच्चों का बल्कि शिक्षकों का भी। यहां पर ऐसे सैंकड़ों बच्चों से मिलवाया जा सकता है जो पांचवीं, आठवीं उत्तीर्ण करके भी अच्छे से लिखना और पढ़ना भी नहीं जानते।

भाषा के सुधार के लिए मैंने समय-समय पर विविध प्रयोग स्वविवेक से किए हैं जिनमें अपेक्षित सफलता भी मिली है।

1. शब्द-युद्ध – दो समूह बनाकर उनसे बारी-बारी से श्यामपट पर मेरे द्वारा बोले गए शब्दों को लिखने को कहा। एक सही शब्द लिखने पर एक अंक प्रदान किया गया। अधिक अंक प्राप्त करने वाले समूह को विजेता घोषित किया गया।

बाद में इसमें परिवर्तन करके शब्द को बुलवाने का कार्य पारस्परिक प्रतिद्वंद्वी समूह को सौंप दिया गया।

2. मात्रा वाले शब्द लिखना – परंपरागत बारहखड़ी के स्थान पर मैंने सभी मात्राओं के दस-दस शब्द लिखकर लाने को कहा। बच्चे बड़ी तत्परता से अपनी किताब में से विभिन्न मात्राओं के शब्द ढूंढते-ढूंढते बहुत कुछ सीख गए। कभी-कभी सिर्फ एक मात्रा जैसे 'इ' के शब्दों को ही निकलवाया तो कभी 'उ' के शब्द निकलवाए।

3. श्रुतलेखन सुधार – परंपरागत श्रुतलेखन में मैंने कई सुधारात्मक सफल प्रयोग किए:

- श्रुतलेखन जांच में अंक प्रणाली अपनाई अर्थात गलतियों के लिए दण्ड के रूप में उनको उतने अंक दिए गए। प्रत्येक बच्चे ने तब प्रयास किया कि उसके कम-से-कम अंक (गलतियां) हों।
- कई बार श्रुतलेखन कराने से पूर्व संबंधित पाठ्यांश को पढ़ने को कहा और फिर उसका श्रुतलेखन बोला।
- श्रुतलेखन के बाद गलतियों को स्वयं ढूंढकर सुधारने का कार्य सौंपा।
- श्रुतलेखन जांच एक-दूसरे से करवाई।

4. पढ़ना-लड़ना – परंपरागत पाठ वाचन को और रुचिकर बनाते हुए इसमें स्वस्थ प्रतियोगिता प्रारंभ की जिसके अंतर्गत बच्चों के समूह बनाकर पाठ वाचन करवाया।

एक समूह जहां पर गलती करता है उसके पेनल्टी अंक हो जाते हैं और उसी स्थान से दूसरा समूह पढ़ता है। विभिन्न समूह बारी-बारी से एक-एक शब्द पढ़ते रहते हैं। वे पेनल्टी बचाने की कोशिश तो करते ही हैं, इस बात पर भी बड़ी मुस्तैदी से ध्यान रखते हैं कि दूसरा समूह कहां गलती कर रहा है। सबसे कम पेनल्टी अंक वाला विजेता समूह हो जाता है। यह प्रयोग बेहद लोकप्रिय व सफल रहा और इसे कभी-कभी प्रयोग में लाता रहता हूं।

एक तो मैं पहले से ही बेहद प्रतिकूल परिस्थितियों में, शिक्षाधिकारियों, शिक्षकों, शिक्षा पद्धतियों के कुचक्रों को बमुश्किल भेदने का प्रयास कर रहा हूं और अपने इन अनुभवों का एक मात्र मंच संदर्भ को मानते हुए उससे कुछ मानसिक बल प्राप्त करने की आशा संजोए बैठा था। परंतु संदर्भ द्वारा आलेख प्राप्ति की सूचना तक नहीं भेजना एक बेहद त्रासद घटना है जिसे मैं यथाशीघ्र भुलाना चाहता हूं। इसीलिए मैंने शैक्षिक संदर्भ से पूरी तरह से नाता तोड़ने का फैसला करते हुए इसका वार्षिक सदस्यता शुल्क नहीं भेजा था।

परन्तु आपने शुल्क समाप्ति के बाद भी संदर्भ भेजकर मेरी समस्त पीड़ा एक बार फिर उभार कर रख दी है।

अजित जैन 'जलज'
ककरवाहा,
टीकमगढ़, म. प्र.

पिछले सप्ताह पहली बार मैंने अपने एक शिक्षक साथी से संदर्भ लेकर पढ़ी। संदर्भ पढ़कर ऐसा लगा कि मेरा छः साल का अध्यापन का अनुभव होने के बावजूद मेरा शिक्षकीय ज्ञान अभी अधूरा है।

बचपन में जिस माहौल में मेरी पढ़ाई हुई वहां मेरी छोटी-छोटी जिज्ञासाओं का समाधान करने वाला कोई नहीं था। धीरे-धीरे जिज्ञासाएं कुंठित होती गईं। लेकिन इस पत्रिका को देखकर अब फिर से जिज्ञासाएं मचल उठी हैं।

मैं बचपन में सोचता था कि पानी की बूंदें और बुलबुले गोल क्यों होते हैं, पत्तियां अलग-अलग आकार की क्यों होती हैं, वगैरह। संदर्भ को देखकर लगता है कि मुझे गुरु मिल गया है। सवालीराम के सवाल मुझे बेहद भाए। मुझे विश्वास हो चला है कि सिर्फ मेरी ही नहीं बल्कि मेरे छात्रों की भी जिज्ञासाओं का समाधान होगा।

शिवपाल सिंह मलिक
महर्षि दयानंद सरस्वती उ. मा. वि.
भिरानी, राजस्थान

मैं बी. कॉम. का छात्र हूं। मुझे राजा शब्बीर हुसैन ने संदर्भ दिखाई व सदस्यता लेने का सुझाव दिया। मेरी विज्ञान में बहुत रुचि है। मुझे संदर्भ देखकर बहुत खुशी हुई क्योंकि ऐसी विज्ञान पत्रिका बहुत ही कम देखने को मिलती है। शायद ऐसी पत्रिकाओं का अभाव है। मैंने 35वें अंक के रूप में संदर्भ को पहली बार

फिलिस फॉग, पासपार्टआउट ..... आगे क्या हुआ?

आज मुझे संदर्भ पढ़ते हुए दो वर्ष हो गए हैं। मैंने सर्वप्रथम इसे एक सरकारी विद्यालय में देखा था तब यह राजकीय विद्यालयों को निःशुल्क भेजी जाती थी। लेकिन मुझे दुख एवं क्षोभ हुआ जब विद्यालय में इस श्रेष्ठ किताब को उपेक्षित हालत में देखा। वहां इसका कोई कद्र -दान नहीं था। आपने ठीक ही किया जो पत्रिका निःशुल्क भेजना बंद कर दिया।

संदर्भ का 36वां अंक इस बार कुछ विलंब से मिला लेकिन यह अंक पिछले कई अंकों के धारावाहिक लेखों का अंतिम पड़ाव लिए हुए होने के कारण काफी महत्वपूर्ण है। 'बृहस्पति के उपग्रह, देशांतर रेखाएं और प्रकाश की गति' लेख में देशांतर रेखाओं और प्रकाश की गति के साथ-साथ एक और बात सामने आई कि 16वीं और 17वीं सदी में जो भी भौगोलिक, राजनैतिक और वैज्ञानिक उथल-पुथल हुई उसका प्रारंभ यूरोप में ही क्यों हुआ। अन्य महाद्वीपों में क्या पुनर्जागरण काल शुरू नहीं हुआ था? यदि नहीं शुरू हुआ था तो इसके क्या कारण थे।

'श्रुतलेखन' लेख में लेखक ने जो विचार रखे हैं वे उचित ही हैं। लेकिन श्रुतलेखन में मात्राओं और वर्तनी में गलतियों का एक कारण और भी है – अध्यापक एवं छात्रों की भौगोलिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि की विभिन्नताएं भी उन्हें प्रभावित करती हैं। साथ ही जैसा कि राजस्थान में है प्राथमिक विद्यालयों में बी. एड. प्रशिक्षित अध्यापक कक्षा को पढ़ा रहे हैं जिन्हें माध्यमिक कक्षाओं को पढ़ाने का प्रशिक्षण मिला हुआ है तथा वहां उसी स्तर का बाल मनोविज्ञान उन्होंने पढ़ा है। ऐसे में बहुत संभव है कि शिक्षक बच्चों को समझ पाने में भूल कर जाते हों।

सवालीराम के जवाब पढ़े। आपने प्रश्नकर्ता के नाम तो दिए जबकि उत्तरदाता के नाम देना शायद भूल गए।

'80 दिनों में दुनिया की सैर' की तीसरी किश्त ने जिज्ञासा को और बढ़ा दिया। कहानी के सभी पात्रों की भूमिका अनुकरणीय और सराहनीय है। विदेशी होते हुए भी उन्होंने थोड़े समय में जिस तरह अनेक चुनौतियों का सामना किया तथा इसी के चलते एक नारी का जीवन बचाने के लिए जो साहस किया, वह जीवन मूल्यों के प्रति उनकी श्रद्धा को प्रकट करता है। लेकिन मेरा हार्दिक निवेदन है कि मेरे जैसे अनेक पाठकों की जिज्ञासाओं का सम्मान करते हुए इस कहानी को अंत तक प्रस्तुत कीजिए वरना यह सफर

अधूरा ही रह जाएगा।

'कहानी चौरी-चौरा की' स्वतंत्रता आंदोलन के नए पहलुओं से परिचित कराती है। वैसे तो भारतीयों का स्वभाव ही रहा है कि वे महापुरुषों में आलौकिक एवं चमत्कारिक सत्ता का आरोपण कर लेते हैं और यही हानिकारक साबित हुआ।

गत रविवार को अवकाश होने के कारण मैं अपनी बहन की ससुराल गया, वहां मेरी भांजी ने एक प्रयोग द्वारा अपने शरीर में विद्युत उत्पन्न कर न केवल मुझे छूकर करंट मारा बल्कि चिन्गारी भी पैदा करके दिखाई। मेरी भांजी जो कि 11वीं कक्षा में विज्ञान विषय लेकर पढ़ रही है, उसने जो प्रयोग किया वह कोई भी कर सकता है। इसकी विधि इस प्रकार है।

सर्वप्रथम एक बालक को ऊनी या पोलिस्टर वाला कपड़ा पहनाकर, किसी प्लास्टिक की कुर्सी पर नंगे पांव, कुर्सी की पीठ वाली दिशा में मुंह करके बैठा दीजिए। फिर कोई दूसरा बालक कोई बड़ा ऊनी वस्त्र लेकर लगभग 3-4 मिनट तक कुर्सी पर बैठे बालक की कमर पर जल्दी-जल्दी मारे। इसके बाद आप कुर्सी पर बैठे बालक के नाखूनों से अपने नाखूनों को छुएं या उसके नाखूनों पर अपने नाखून रखें, तो न केवल करंट लगेगा बल्कि चट-चट सी आवाज़ भी सुनाई देगी।

अगर इसे अंधेरे में करके देखें तो चिंगारी-सी उछलती भी दिखाई देगी। यद्यपि यह करंट क्षणिक ही होता है। मेरी दृष्टि में इसका कारण ऊनी या पोलिस्टर वस्त्रों में घर्षण से विद्युत आवेश उत्पन्न हो जाता होगा जिससे इस प्रकार का करंट लगता है।

21वीं सदी को कम्प्यूटर की सदी बताया जा रहा है। कृपया आप इससे संबंधित जानकारी भी दीजिए।

रमेश जांगिड़

भिरानी, हनुमान नगर, राजस्थान

देखा है। 'उबलते पानी के चश्मे' के बारे में मुझे बहुत ही हैरत हुई कि ऐसे चश्मे भी होते हैं और पता चला कि वे बनते कैसे हैं। 'तितलियों में रंग' भी काफी मज़ेदार लगा।

मुझे इस बारे में उम्मीद न थी कि रंजकों के बगैर कुछ चीज़ें रंगीन हो सकती हैं। मुखपृष्ठ तथा पिछला आवरण बहुत ही आकर्षक व काबिले-तारीफ है। संदर्भ के बारे में मेरे कुछ सुझाव हैं कि आप इसमें कुछ विज्ञान के मॉडल बनाने का स्तंभ शुरू करें।

अगर इस पत्रिका का अंग्रेज़ी संस्करण निकलने लगे तो वह पत्रिका पूरे देश व पूरी दुनिया में कई और लोगों के पास पहुंच सकेगी क्योंकि हमारे देश व विदेशों में भी अंग्रेज़ी भाषी ज़्यादा हैं। मुझे इस पत्रिका की सदस्यता लेना है। मगर मेरे पापा मना कर रहे हैं। वे कहते हैं कि यह सब फिज़ूलखर्च है। कृपया आप बताएं कि मैं संदर्भ की सदस्यता किस तरह लूं।

हुजेका यमानी
भोपाल

सदस्यता के नवीनीकरण के संदर्भ में आपका पत्र प्राप्त हुआ। जहां तक आपने संदर्भ के बारे में मेरे विचार जानने चाहे हैं तो मैं बता दूं कि इससे पूर्व लिखे खत में मैंने कहा था कि पत्रिका का आकार थोड़ा बड़ा करें। 6" x 9" का आकार बहुत बढ़िया रहेगा। आप 'संदर्भ' को बुक स्टालों पर उपलब्ध कराना चाह रहे हैं तो कम-से-कम पत्रिका का साइज़ ऐसा होना चाहिए कि वह लोगों को आसानी से नज़र आए।

इसके अतिरिक्त आप 'संदर्भ' का विज्ञापन ऐसी पत्रिकाओं में प्रकाशित करा सकते हैं जो विज्ञान व शिक्षा से संबंधित हों जैसे 'विज्ञान प्रगति', 'साइंस रिपोर्टर' वगैरह। साथ ही मैंने पत्रिका के अंदर के चित्रों को भी रंगीन देने का सुझाव दिया था, इससे पत्रिका के आकर्षण में इज़ाफा होगा। इस पत्रिका की भाषा भी सामान्य बोलचाल के निकट ही प्रतीत होती है। अंक-33 के संदर्भ में कहना चाहूंगा कि यह अंक भी ठीक समय पर मुझे प्राप्त हुआ। साथ में लेखकीय प्रति भेजने के लिए धन्यवाद। सभी लेख बहुत ही अच्छे थे विशेषकर 'सांपों की गति' से संबंधित व 'बंगाल में इस्लाम का फैलना', बस इस अंक में कहानी की कमी कुछ अखरी।

आसिफ अली खान
रेलवे कॉलोनी, फतेहपुर, उ. प्र.

अंक 36 में प्रकाशित लेख 'कहानी चौरी-चौरा की' पढ़ा। इसे पढ़कर कई पूर्वाग्रह दूर हो गए। आप अपने अंकों में प्रसिद्ध वैज्ञानिकों की जीवनियां भी प्रकाशित कीजिए, संदर्भ में उनका अभाव खलता है। इस बार मुखपृष्ठ पर मकड़ी के जाले में फंसी ओस की बूंदों वाला चित्र काफी आकर्षक लगा।

मीतू मोतियानी
शंकर गली, मोतीबाग, सेंधवा म. प्र.

मैं 'संदर्भ' का नियमित पाठक हूं। यह मेरी मनपसंद पत्रिका है। मुझे इसके प्रत्येक अंक का बेसब्री से इंतज़ार रहता है। मैं इस पत्रिका के हर अंक को पढ़ने के बाद अच्छे से संभालकर रखता हूं ताकि बाद में अगर ज़रूरत पड़े तो मुश्किल न हो।

मुझे आज ही 36वां अंक प्राप्त हुआ, लेकिन 35वां अंक अभी तक मुझे नहीं मिला है। कृपया इस अंक को शीघ्र भिजवाने की अनुकंपा करें।

देवनीष कुमार
दल्ली राजहरा, दुर्ग, छत्तीसगढ़